© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 07 | October - December 2018

चित्त प्रसादन के उपायों की विवेचना

श्री जयपाल सिंह , रिम्पी
[1]सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।
[2]एम.ए. योग द्वितीय वर्ष , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

सार : योगदर्षन के रचयिता महर्षि पतंजलि हैं, पातञ्जल योग सूत्र में चार पाद हैं। प्रथम पाद का नाम है – समाधिपाद, द्वितीय– साधनपाद, तृतीय– विभूतिपाद तथा चतुर्थ – कैवल्यपाद है। सर्वप्रथम पंतजलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों को रोकना या नियन्त्रित करना 'योग' है अर्थात् चित्त की वृत्तियॉ जो सतत् चलायमान अतएव क्षिप्त आदि रहा करती हैं, को अभ्यास के द्वारा नियन्त्रित करना या अन्तर्मुखी कर लेना, जिससे कि सभी वृत्तियां नियन्त्रित हो जाऍ और अत्यन्त सघन एकाग्रता (समाधि) का निर्माण हो जाऍ, योग है। पतंजलि ने इसके लिये जिस सूत्र का निर्देष किया वह है "योगष्चित्तवृत्तिनिरोधः"। इस सूत्र में प्रयुक्त तीनों शब्द – चित्त, वृत्ति और निरोध की संक्षिप्त व्याख्या आवष्यक है।

ISSN 2454-308X

चित्तः
चित्त जड़ है, त्रिगुणात्मिका है। योग दर्षन में प्रयुक्त चित्त शब्द, मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त इन चारों ही अन्तरिन्द्रियों की ओर संकेत रखता है। चित्त में जीव के जन्म–जन्मातर के संस्कार एकत्रित रहते हैं। इसलिये चित्त को जीतना सहज नहीं। चित्त के भीतर वृत्ति प्रवाह के केवल दो कारण होते हैं – वासना अर्थात् भावनामय संस्कार तथा प्राण का प्रवाह। भाष्यकार व्यास ने चित्त की पांच अवस्थायें बताई हैं – मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र, निरूद्ध ।

वृत्तिः
वृत्ति के दो अर्थ हैं– बर्ताव करना, या गोल–गोल (वर्तुलाकार) घूमना। चित्त जो–जो बर्ताव या कार्य करता है वह सब वृत्ति है, विचार करना, भावना करना, अनुभव करना, कल्पना करना आदि सभी चित्त की वृत्तियॉ हैं। अतः चित्त में विषयों के संपर्क से जो परिणाम उत्पन्न होते हैं उन्हें ही वृत्तियॉ कहते हैं।

निरोधः
वृत्ति का स्व–कारण चित्त में लीन होना निरोध कहा जाता है। निरोध होने पर चित्त में वृत्तियॉ उठनी बन्द हो जाती हैं। पतंजलि ने पांच वृत्तियॉ बतलाई – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति। इनमें से कुछ वृत्तियॉ क्लिष्ट तथा कुछ अक्लिष्ट होती हैं। इस प्रकार सभी वृत्तियॉ क्लेष रूप विक्षेप के द्वारा योग (समाधि) की विरोधिनी होने से निरोध करने योग्य हैं। इन वृत्तियों के निरोध होने पर योग की स्थिति में पहुॅचना आसान हो जाता है।

चित्त विक्षेप (अन्तराय) – "विक्षिपन्ति योगात् अपनयन्ति इति विक्षेपाः।" इस व्युपत्ति के अनुसार जो तत्व चित्त को विक्षिप्त कर एकाग्रता से प्रच्युत कर देते हैं वे चित्त के विक्षेपक हैं। इनकी संख्या नौ है। ये हैं – व्याधि, स्त्यान, संषय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्षन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व। ये नौ चित्त को चंचल या अस्थिर करने वाले हैं। अतः ये योग के विरोधी होने से अन्तरायें या विघ्न रूप हैं। इन नवों अन्तरायों के रहने पर ही पूर्वोक्त प्रमाणादि वृत्तियॉ उत्पन्न होकर चित्त को विक्षिप्त या चंचल करती हैं, किन्तु इनका यदि सर्वथा अभाव हो जाए तो उक्त वृत्तियॉ उत्पन्न ही नहीं होंगी और चित्त स्थिर रहेगा। उपर्युक्त तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि रोग चाहे दिखने में शारीरिक ही क्यों न हो उसका मूल कारण चित्त का विक्षिप्त होना या बिगड़ना ही है।

चित्तप्रसादनः
विविधाविध विक्षेपों ये विक्षिप्त चित्त में जिस प्रकार अन्तराय उत्पन्न होते हैं, उससे अभ्यास में बहुत अधिक बाधा उपस्थित हो जाती है। अतः उन विक्षेपों को दूर करने के लिये चित्त–प्रसादन या चित्त की प्रसन्नता का अभ्यास करना चाहिये।

चित्त वृत्ति निरोधक उपायः
चित्तविक्षेप–प्रकरण के अन्तर्गत ऐसे तत्वों का निरूपण किया गया है जिनसे विक्षेप होते हैं और तत्प्रयुक्त चित्त चंचल या अस्थिर रहा करता है। ऐसे चित्त विक्षेपों को किस प्रकार दूर कर चित्त को स्थिर, शांत और प्रसन्न रखा जा सकता है। यह चित्त प्रसादन–प्रकरण में निरूपित किया गया। अब इन चित्त वृत्तियों का किस प्रकार संपूर्णतः निरोध या समाप्त किया जाए इसके लिये जो उपाय बताये गये हैं, उनमें प्रथम है– अभ्यास एवं वैराग्य। पतंजलि के अनुसार अभ्यास से एवं वैराग्य से चित्त वृत्तियों का निरोध संभव है।

ईष्वरः

पतंजलि ने अपने योग सूत्र में कहा है कि पुरूष से विषेष ईष्वर है, अपितु ईष्वर प्रणिधान से भी चित्तवृत्तिनिरोध रूप समाधि की प्राप्ति हो सकती हैं अर्थात् जिस प्रकार अभ्यास–वैराग्य स्वतन्त्र रूप चित्तवृत्तिनिरोध करने में समर्थ है, उसी प्रकार ईष्वर प्रणिधान स्वतन्त्र रूप से निरोध कर योग का लक्ष्य प्राप्त कराने में समर्थ है। ईष्वर प्राणिधान का अर्थ है– मन, वचन, कर्म से अपने को संपूर्णतः ईष्वर के प्रति समर्पित कर देना। इस प्रकार के समर्पण से चित्त की वृत्तियॉ निरूद्ध हो सकती है। परिणामतः समाधि एवं विवेकख्याति की उपलब्धि तथा सकल दुःख निवृत्तिमूलक कैवल्य की प्राप्ति हो सकती है तथा ईष्वर का बोधकषब्द ओंकार है अर्थात् ईष्वर का नाम 'ओउम्' है।

समापत्ति एवं समाधिः

चित्त की प्रत्यदचेतनागति अर्थात् अन्दर जाने की प्रक्रिया या अन्तर्मुख होने का नाम समापत्ति है। पर्याप्त अभ्यास के बाद जब वृत्तियॉ क्षीण या दुर्बल हो जाती हैं, तब चित्त स्वतः अन्दर परावृत हो अपने ही रूप (स्वरूप) को स्थित हो जाता है अर्थात् चित्त उस विषय के साथ एकाकार हो जाता है अर्थात् ग्रहीता चित्त और ग्राह्य विषय दोनों एकरूप जैसे हो जाते हैं। जब तक चित्त विषय से दूर रहेगा तभी तक इन्द्रियों का कुछ अनुभव लेकर विषय ज्ञान का ग्रहण कर पायेगा, किन्तु ग्रहीता का ही ग्राह्य बन जाने पर ज्ञान के ग्रहण की प्रक्रिया भी कठिन हो जायेगी। दूसरे शब्दों में ग्रहीता, ग्रहण, ग्रास इन तीनों
में एकात्मकता हो जायेगी। इसी एकरूपता की प्रक्रिया का परिभाषिक नाम 'योग में समापत्ति' है। इससे यह स्पष्ट है कि समापत्ति की प्रक्रियाओं का अंतिम परिणाम ही सबीज समाधि है अर्थात समापत्ति एक गतिषील प्रक्रिया का नाम है जिसका स्थाई परिणाम सबीच समाधि है। यही कारण है कि अधिकांष टीकाकारों ने समापत्ति को ही सम्प्रज्ञात या सबीज कह डाला किन्तु समापत्ति प्रक्रिया है एवं सम्प्रज्ञात या सबीज समाधि परिणाम हैं। इस समापत्ति के चार प्रकार माने जाते हैं – सवितर्का, निर्वितर्का, सविचारा तथा निर्विचारा।

सम्प्रज्ञातः

वितर्क (गहरे विचार), विचार (बुरे–अच्छे विचार), आनन्द और अस्मिता (मैं हूॅ यह भावना), इनके आधार या सहारे से सम्प्रज्ञात यह एक विषिष्ट योग प्रदेष का नाम है। इस अवस्था में "मैं आनन्द में हूॅ" ऐसे अनुभव साधक करता हैं परन्तु यह अवस्था भी सापेक्ष होती है, अतः अभ्यास के द्वारा यह स्थिति भी समाप्त होने पर जो चतुर्थ या अंतिम प्रवेष का अनुभव होता है उसमें "मैं हूॅ" यह अनुभव होने लगता है। इस अनुभव की स्थिति को ही 'अस्मिता' कहा जाता है और यही सब सम्प्रज्ञात का प्रदेष है।

अन्यः

इसके आगे भी योग मार्ग में चित्त की अन्तर्यात्रा चलती रहती है किन्तु आगे के प्रदेष का कोई विषेष नाम नहीं दिया गया है। सम्प्रज्ञात के अनुभव अर्थात् "मैं हूॅ" यह अनुभव भी जब समाप्त हो जाते हैं तब आगे जो कुछ भी होता है उसको कौन बता सकता है ? अतः ऐसे अनुभवों को पतंजलि ने "अन्य" कहा है।

क्लेषः

'क्लेष' योग का एक पारिभाषिक शब्द है। ये हमारे दुःख के मूल कारण है। ये अनादि एवं अनन्त होते हैं तथा बड़े ही सूक्ष्म अर्थात समझने में कठिन होते हैं। क्लेषों का सम्बन्ध कर्म तथा कर्माषय से रहता है। कर्माषय में कर्म संचित होने के कारण क्लेष हैं। इसलिये कर्माषयों के कर्मों का जब विपाक होता है तब जो फल प्राप्त होते हैं वे प्रायः क्लेषदायक ही होते हैं। इन क्लेषदायक फलों को मनुष्य के वर्तमान या भूत या भविष्य के जन्म में भुगतना पड़ता है अर्थात् जो सुख–दुःख हम भुगतते हैं, वे सारे हमारे कर्माषय में संचित कर्मो के कारण हैं तथा वे क्लेषमूलक होने से प्रायः अधिकतर दुःखदायक ही होते हैं। क्लेष पॉच प्रकार के हैं – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेष। इन पॉचों में अविद्या मुख्य है तथा सभी क्लेषों की जननी है।

क्रियायोगः

'क्रिया' शब्द का अर्थ है 'किया जाने वाला' अर्थात अधिकतर शरीर के द्वारा किया जाने वाला। जैसे मन से किये जाने वाले कार्यों के लिये भी 'क्रिया' शब्द का प्रयोग किया जाता है, किन्तु वहॉ भी मन का सभी के साथ सम्बन्ध होता है। जो साधक यम, नियम का पालन करने में परेषानी अनुभव करते हैं उनके लिये सरल उपाय क्रिया योग है। वे क्रिया योग करके यम, नियम का पालन करते हैं तथा क्रिया योग से क्लेष क्षीण होते हैं। इसके तीन प्रकार पतंजलि ने बताये हैं – तप, स्वाध्याय और ईष्वर प्रणिधान ।

अष्टांगयोगः

सर्वप्रथम क्रिया योग का अभ्यास कर लेने से अष्टांगयोग सरल हो जाता है और साथ–साथ वैराग्य–अभ्यास भी चलता रहे तो फल शीघ्र प्राप्त होता है। इस प्रकार अष्टांग योग ही पतंजलि का विवेच्य विषय रहा है। जिसके आठ अंग हैं – यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

विभूतिः

पतंजलि के अनुसार धारणा, ध्यान, समाधि (संयम) आदि में जो एक विषय मन को एकाग्र करने के लिये साधक ने बनाया होगा उसी पर संयम होने से उस प्रकार की विभूति होगी। अतः इस दृष्टि से जो भी विभूतियॉ पहले अद्भुत शक्ति जैसी दिखाई देती हैं, वह ध्यान विषय के सम्बन्ध में संयम द्वारा प्राप्त ज्ञान का स्वाभाविक परिणाम हैं। इसी कारण विभूतियों की प्राप्ति के लिये एकमात्र पद्धति 'संयम' ही पतंजलि ने कही है। यहॉ विभूतियों से अर्थ चमत्कार से नहीं हैं बल्कि ये विभूतियॉ समाधि में पहुॅचने में सहायता करती हैं।

कैवल्यः

योग साधना की यह चरम परिणति है। इसकी प्राप्ति के बाद साधक पुनः इस संसार में नहीं लौटता, मुक्त हो जाता है। सामान्यतः अष्टांग योग के प्रथम पॉच अंग – बहिरंग तथा बाद के तीन अंग अन्तरंग कहे जाते हैं। कारण यह है कि बाद के तीन अंग धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास मात्र आन्तरिक रूप में होना ही संभव हैं। जिसकी अंतिम परिणति है समाधि किन्तु यह सबीज समाधि होती है। इसके बाद निर्बीज समाधि के लिये अभ्यास बढ़ाया जा सकता है। निर्बीज समाधि के आगे धर्ममेघ समाधि पर जाने पर ही कैवल्य की प्राप्ति होती है। निर्बीज समाधि में कैवल्य की प्राप्ति नहीं होती। धर्ममेघ समाधि में योगी मुक्त होकर सांसारिक चेतना से छुटकारा पा लेता है।"

सन्दर्भ :

- पं0 हरिकृष्णषास्त्री दातार, योग सिद्धान्त एवम् साधना, चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी, 1998] पृ0 4] 5।
- विष्णुपुराण।
- पातन्जल योग सूत्र –1/2।
- सांख्यदर्षनम्
- भगवद्गीता – 2/48।
- अमरकोष – 3 काण्ड, नानार्थ 22।
- पं0 हरिकृष्ण षास्त्री दातार, योग सिद्धान्त एवं साधना, चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी, 1998ए पृ0–7।
- कठोपनिषद् –2/3/10 दृ 11।
- राजकुमारी पाण्डेय, भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राधा पब्लिकेषन, 4398/4 बी, अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली, 1993] पृ0 12/4।
- डा0 पीताम्बर झा, योग परिचय, गुप्ता प्रकाषन, डी–35 साउथ एक्सटैषन भाग–एक, नई दिल्ली, 1989] पृ0 6 दृ 38।